Chapter. 2

अध्याय द्वितीय

दोहा छन्द का भाषिक विकास

दोहा छंद सामान्य रूप से लोकाग्रही छंद है। लोक साहित्य में इसका प्रचलन बहुत पुराना है। दोहा छंद जन सामान्य में अत्यधिक प्रचलित एवं प्रसिद्ध रहा है। मानव लोक जीवन में दोहा की पैठ बहुत ही मज़बूत रही है। यदि हम 'लोक' शब्द की प्राचीनता पर दृष्टिपात करें तो इस शब्द के लिए विद्वानों का मत है कि - ''लोक शब्द संस्कृत के लोक दर्शने धातु से 'धञ्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है।

(सिद्धांत कौमुदी, पृ. 417 (वैंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई) 1986)

साथ ही साथ-लोक शब्द की प्राचीनता के सम्बंध में ऋग्वेद में भी साधारण जनता के अर्थ में इसका प्रयोग अनेक स्थानों पर किया गया है। ''ऋग्वेद में लोक शब्द के लिए 'जन' शब्द का भी प्रयोग किया गया है।''

(ऋग्वेद 3/53/12)

साहित्य के वैयाकरणों ने भी इस 'लोक' एवं 'जन' शब्द को लेकर अनेक जगहों पर अपने मंतव्य प्रस्तुत किये हैं। महा वैयाकरण पाणिनि ने अपनी ''अष्टाध्यायी'' में 'लोक' तथा 'सर्वलोक' शब्दों का उल्लेख किया है तथा इसमें 'ठञ्' प्रत्यय करने पर 'लौकिक' तथा सार्वलौकिक शब्दों की निष्पत्ति की है।

(लोक सर्वलोकाट्ठञ/5/1/44)

'लोक' के विषय में महर्षि व्यास ने अपनी शतसाहस्री संहिता की विशेषताओं का वर्णन करते हुए लिखा है कि - ''यह ग्रन्थ (महाभारत) अज्ञान रूपी अंधकार से अंधे होकर व्यथित लोक (साधारण जन) की आँखों को ज्ञात रूपी अंजन की शलाका लगाकर खोल देता है।''

(महाभारत, आ.प., 1/84)

'दोहा' जन सामान्य में लोकप्रिय होने के कारण इसे बहुत ही प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। अतः जब से लोक साहित्य का या जनगीत का प्रारम्भ हुआ है तभी से इस छंद का प्रयोग देखा जा सकता है। एक तो यह छंद वर्णवृत्त में छोटा है और शीघ्र ही कण्ठस्थ हो जाने वाला है, यही कारण है कि संस्कृत पालि प्राकृत, अपभ्रंश से लेकर हिन्दी की प्रायः सभी आंचलिक बोलियों में इसका सृजन हुआ है, अतः हिन्दी साहित्य में आदि काल से लेकर वर्तमान तक इसका अक्षत प्रयोग देखा जा सकता है। इस छंद का सर्वाधिक प्रयोग ब्रज भाषा में हुआ है, जिसका मुख्य कारण यही है कि पूर्व मध्यकाल से उत्तर मध्यकाल तक संपूर्ण राष्ट्र में 'ब्रजभाषा' काव्य-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित थी, देश में किसी भी प्रान्त का या किसी भी आंचलिक भाषा का कवि राष्ट्रीय स्तर पर तभी सम्मानित हो पाता था जब वह ब्रजभाषा में शुद्ध काव्य सृजन कर पाता।

ब्रज भाषा में दोहा छंद के प्रचुर प्रयोग का एक कारण यह भी था कि आचार्य कवियों ने काव्यानुशासन हेतु जो लक्षण ग्रन्थ लिखे हैं, उनमें लक्षण और उदाहरण के लिए एक अनुकूल और लघुवृत्तीय छंद की अपेक्षा थी, जिनमें दोहा, सोरठा, बरवै, चौपाई, जैसे लघुवृत्तीय छंद मान्य थे, किन्तु इनमें दोहा छंद अपेक्षाकृत अधिक सरल सहज एवं लोकप्रिय था इसलिए अधिकांश लक्षण ग्रंथकारों ने काव्य के लक्षण के रुप में दोहा छंद काही प्रयोग किया है जब कि उदाहरण के रुप में उन्होंने सवैया, कवित्त, छप्पय, कुण्डलिया जैसे अपेक्षाकृत दीर्घ वृत्तीय छंदों का प्रयोग किया है। उदाहरणतः

शुक्लाभिसारिका नायिका का लक्षण कवि दोहा छंद मे व्यक्त करता है यथा-

लक्षण- **श्वेतवस्त्र मोतिन मढी, गौर वर्ण सुकुमारि ।**
पूनम निशि प्रिय ढिंगचली, शुक्ल पक्ष अभिसारि ॥[1]

इसके उदाहरण में कवि ने घनाक्षरी छंद प्रस्तुत किया है यथा-

कवित्त :-

सजि ब्रजचंद पै चली है चारु चंद मुखी,
चंद चाँदनी कौ मुख मंद सौ करत जात।

कहै पद्माकर त्यौं सहज सरोजहिं के,
कंज बन कुंजन में कंज से धरत जात।
धरत जहाँहीं जहाँ पग है सुप्यारी तहाँ,
मंजुल मजीठ ही के माँठ से ढरत जात।
हारन सौ हीरा सेतु सारिन किनारिन ते,
बारन ते मुक्ता हजारन झरत जात।

(पद्माकर)

वैसे भी हिन्दी साहित्य के इतिहास का अवलोकन करें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि सम्पूर्ण हिन्दी काव्य में दोहा, सवैया, घनाक्षरी, छंदों का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है।

दोहा छंद अधिकतर आंचलिक भाषाओं में ही लिखा गया है, इसका एक सांस्कृतिक आधार भी है जिसके तहत पचासा, बावनी, शतक, पंचशती, सतसई हजारा आदि जैसे परिमाण वाची संग्रह सामने आ चुके हैं, इसके अतिरिक्त अनेक प्रबंध काव्यों, खण्ड काव्यों, महाकाव्यों और लक्षण ग्रन्थों में भी यौगिक छंद के रूप में दोहा छंद का प्रयोग, देखा जा सकता है। साथ ही दोहा छंद से संग्रहीत ग्रन्थ अधिकतर धार्मिक परिवेश से जुडे रहे हैं। यही कारण है कि अधिकांश देवी देवताओं से सम्बंधित भक्ति परक धार्मिक काव्यों में आंचलिक भाषा के अन्तर्गत इसी दोहा छंद का प्रयोग हुआ है। वैद्यक निघंटु विषयक अनेक ग्रन्थ दोहा छन्द में लिखे गए हैं।

भाषिक रुप से यदि दोहा छंद की विवेचना की जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि लोक भाषिक वैविध्य पूर्ण लोक व ग्राम्यांचली भाषिक शब्द सम्पदा इनमें समाविष्ट हुई है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोक के सम्बंध में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि- ''लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यवहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है। ये लोग नगर मे परिष्कृत रुचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिस्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएं आवश्यक होती हैं उनको उत्पन्न करते हैं।''

(आ. ह. प्र. द्विवेदीः 'जनपद', वर्ष-1, अंक-1, पृ.65)

लोक समाज अपने परम्परित नीति एवं शिक्षा सम्बंधी ज्ञान को इसी दोहा छंद में संयोजित करके पीढ़ी दर पीढ़ी उत्पन्न करते और व्यवहारिक बनाते हैं। लोक भोग्य होने के कारण यह छंद कवावतों, लोकोक्तियों, पहेलियों एवं यत्र-तत्र लोक कथाओं में भी प्रचलित रहा है और अपनी इसी

प्रकृति के कारण हिन्दी ही नहीं हिन्दीतर और भी अनेक प्रांतिय भाषाओं में लोकप्रिय रहा है। अधिकांश पहेलियाँ इसी छंद में सामने आती हैं तथा अनेक लोकोत्तियाँ भी दोहा छंद में प्रसिद्ध है।

हिन्दी साहित्य में दोहा छंद के उद्‌भव एवं आरम्भ को लेकर विद्वानों में मतमतान्तर हैं किन्तु यह तो अवश्य ही कहा जा सकता है कि जबसे हिन्दी साहित्य के इतिहास का व्यवस्थित रुप सामने आया है तब से प्रारम्भिक काल से ही दोहा या दूहा छंद प्रयुक्त होता रहा है, आदि कालीन साहित्य में भी पहले जनवाणी में व्याप्त लोक साहित्य में इन दोहों का प्रयोग हो चुका था। सिद्ध और नाथ पंथी साधुओं ने दोहा छंद का बहुत प्रयोग किया था। संवत 990 में देवसेन नामक एक जैन ग्रंथकार हुए हैं जिन्होंने 'श्रावकाचार' नामक एक पुस्तक दोहों में रची थी जिसकी भाषा अपभ्रंश का अधिक प्रचलित रुप लिए हुए हैं। जिसका उल्लेख हम अपने शोध प्रबंध के प्रथम अध्याय ! दोहा का उद्‌भव और विकास में कर चुके हैं।

सिद्धों में सबसे पुराने 'सरहपा' जिनका काल डॉ. विनयतोष भट्टाचार्य ने विक्रम संवत 690 निश्चित किया है उनके दोहों में भी अपभ्रंश मिश्रित देशभाषा का रुप मिलता है। जिसका विवेचन हम आगे कर चुके हैं। अमीर खुसरों के गीतों में लोकोत्तियों में पहेलियों एवं कह मुकरियों में प्रकारान्तर से इसी दोहा छन्द का प्रयोग हुआ है।

लोकोत्तियों में दोहा छंद का रुप कुछ बिगडा हुआ है जैसे :-

बन्दर बाँटा होइ रहा, बरसत आत्म सनेह।
अंधौ बाँटै रेवड़ी, फिर फिर अपनेन देहि॥

इसी प्रकार लोक कथाओं के मध्य में भी सूत्र वाक्यों को प्रकट करने के लिए दोहा छंद का प्रयोग देखा जा सकता है -

मामा तो हिरना भए, हिरना गए बिदेश।
हम दुखिया इकले भए, का सौं कहें संदेश॥

या फिर -

सीख दीजै वाकौ जाकौं सीख सुहाय।
सीख दीन्ही बानरा कौं घर बया कौ जाय॥

इसी तरह से-

छोटौ दीपक देहरा, भीतन चढ़ी मसाल।
सूरज ने फेंकी अगनि, राज महल तक ज्वाल॥

या फिर -

रानी छत पै घूमती, बिखरे स्यामल केस।
यक्षपुरी के यक्ष ने, तब ही बदले वेश॥

इस तरह कहानियों, लोकोत्तियों तथा लोक गीतों में इन दोहों को पृथक-पृथक रुप में देखा जा सकता है। इसी प्रकार आदिकालीन रासो ग्रंथों तथा जैन काव्यों के प्रबंधग्रंथों में कथा सूत्रों को अग्रसर करने के लिए इन दोहों का प्रयोग होता रहा है।

वैसे तो दोहा शब्द की प्रगति लोक गीतों से ही पुष्ट हुई है क्योंकि इससे पहले कबीर, रहीम जायसी, सूर, तुलसी, मीरा, दयाराम, बिहारी, अखा आदि ढ़ेर सारे कवि हुए हैं जिन्होंने अपनी-अपनी प्रान्तीय बोलियों में दोहा छंद का निबंधन करके दोहा को जैसे लोक भोग्य एक छंद ही बना दिया था। इसके अतिरिक्त लोक साहित्य में भी दोहा छंद अत्यंत प्रसिद्ध रहा है। घाघ की कहावतें हों या नीति परक दोहे हों, सर्वत्र ही लोक मानस में यही छंद प्रचलित रहा है। इसी छंद का विस्तार देते हुए कुण्डलिया छंद का जन्म हुआ जिसमें दो पंक्तियों में यही दोहा छंद प्रयुक्त हुआ और बाद में कुण्डयिा छंद की पूर्ति की गई। जैसे-

लाठी में गुन भौत हैं, सदा राखिए संग।
गहिरो नदि नालौ जहाँ तहाँ बचावै अंग॥(2)
तहाँ बचावै अंग झपट कुत्ता में मारै।
दुश्मन दावागीर होय तिन्हूं कौ झारै॥
कहि गिरधर कविराय सुनौ हे घर के बाठी।
सब हथियारन छाँड़ि हाथ में लीजै लाठी॥

इसी तरह कुछ प्रसिद्ध कवियों के दोहों को व्याख्यायित करने के लिए अन्य कवियों ने भी मूल दोहा छंद का प्रयुक्त करते हुए कुण्डलियों का सृजन किया है। जैसे बिहारी सतसई की टीका करनेवाले कृष्ण कवि ने बिहारी के मूल दोहों का प्रयोग करते हुए कुण्डलिया छंद में उनकी व्याख्या या टीका प्रस्तुत की है। जैसे-

मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोय।
जा तन की झाँई परै श्याम हरित दुति होय॥(3)
श्याम हरित दुति होय, गौर वर्णा है राधा ।
श्यामा श्याम स्वरुप विम्ब जो परत अगाधा॥

कृष्ण कहत पीताभ रंग पै स्याम उभेरी।
हरित रंग दुति होय बुद्धि यह भासत मेरी।।

इसी दोहा छंद के बंध को यदि आगे पीछे कर दिया जाय तो-यही छंद सोरठा नाम से जाना जाएगा। जैसे-

माटी कहै कुम्हार सौ तू का रुंधै मोय।
एक दिन ऐसा होयगा मैं रुधूंगी तोय।।(4)
इसी का सोरठा रुप -
तू का रुंधै मोय, माटी कहै कुम्हार सौ।
मैं रूंधूंगी तोय, एक दिन ऐसा होयगा।।

कहने का तात्पर्य यही है कि यह छंद लोक संस्कृति का छंद है कहानियों पहेलियों तथा संस्कार गीतों में अधिकतर इसी छंद का प्रयोग होता रहा है इसी लिए इसे लोकाग्रही छंद भी कहा गया है। यह छंद लोक कवियों से लेकर राजकवियों तक प्रसिद्ध रहा है। इसी दोहा छंद से प्रभावित होकर हिन्दी गज़लों में 'शेर' लिखे जाते रहे हैं। जो मुक्तक छंद की ही तरह गज़ल में प्रयुक्त होते रहे हैं। इसी प्रकार कुण्डलिया छंद के अनन्तर कीर्तन पदों में भी इसी दोहा छंद का प्रयोग यत्र-तत्र देखा जा सकता है। भक्तिकाल के कवि तथा अष्टछाप के प्रसिद्ध कीर्तनकार नंददासजी ने अपने भ्रमर गीत में इसी दोहा छंद में एक अतिरिक्त अंश जोडकर पुच्छल दोहा के रुप में इसका प्रयोग किया है। दोहे के अन्त में 'सुनो ब्रजनागरी' का अंश जोडकर इसका एक अन्य रुप भी उन्होंने संयोजित किया है। पुष्टि मार्ग के आचार्य गोस्वामी हरिराय जी, जो रसिक प्रीतम की छाप से काव्य रचना करते थे उन्होंने भी अपने लघु प्रबंध में दान लीला काव्य में इसी पुच्छल दोहे का प्रयोग किया है जैसे -

मन मेरौ तारेन बसै, अब अंजनि की रेख।
चोखी प्रीति हिये बसै, ताते सामल भेख।।(5)
– सुनो ब्रजनागरी

इस तरह देखा जा सकता है कि घुमा फिराकर दोहा छंद का प्रयोग अनेक विधियों से कवियों ने स्वीकारा है। इसी लिए यह काव्य में सम्भवतः सर्वाधिक रुप में प्रयुक्त हुआ है। दोहों में लिखे गये परिमाण वाची संग्रह भी ग्रन्थाकार रुप में सामने आये हैं जो सम्पूर्ण रुप से दोहा छंद में ही रचे गये हैं। इस तरह दोहों का वृत्त स्वतंत्र और समन्वित दोनों ही रुपों में प्रस्तुत हुआ है। अन्यत्र हमने स्पष्ट किया है कि भारत वर्ष में दोहों का इतिहास बहुत पुराना है। प्राचीन लोक कथाओ,

कहानियों, लोकगीतो, पौराणिक ग्रन्थो की टीकाओं, अनुवादों, कथाओं, वार्ताओं, नाटक, नौटंकी, स्वांग भगत, रास लीला, रामलीला आदि अनेक प्रसंगों में दोहा छंद का वैविध्यपूर्ण प्रयोग हुआ है।

दोहा के इन विविध रुपों में प्रसंगानुसार ही भाषिक प्रयोग भी सामने आये हैं। वैसे तो दोहा छंद की केन्द्रिय भाषा ब्रजभाषा ही रही है जो आदिकाल से लेकर आधुनिक काल के पूर्वार्द्ध तक दोहा छंद पर छायी रही हैं। खड़ी बोली में दोहा छन्द का अधिक प्रयोग 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में या फिर अंतिम दशक में अधिक हुआ है, यह कहा जा सकता है।

दोहा छंद साहित्य की विभिन्न विधाओं में विभिन्न परिस्थिति में तथा विभिन्न देशकाल में प्रस्तुत हुआ है, जहाँ यह छंद लोक कथाओं में समाविष्ट है। वहाँ इसका स्वरुप जनवादी है तथा भाषा लोक की प्रचलित भाषा है। भाषा के सम्बंध में दोहा छंद की सर्वाधिक प्राचीन भाषा प्राकृत रही है, जो अधिकांश जैन एवं बौद्ध साहित्य में प्रयुक्त देखी जा सकती है। जैसे-जैसे साहित्य में विधाओं का विकास हुआ उसी के अनुसार ही भाषा के विभिन्न रुप भी सामने आये।

दोहों में लोक भाषा हिन्दी के प्रारम्भिक रुप अमीर खुसरों के दोहों में मिलते हैं। जिनमें रेखता, उर्दू और हिन्दवी भाषा के ऐसे रुढ प्रयोग हैं जो उर्दू के समकक्ष अनुभव किये जा सकते हैं जिनपर फारसी तथा उर्दू अदब का प्रभाव है। ये दोहे बहुत करके उनके द्वारा या उनके समकालीन अनुयायियों द्वारा रचित कब्बालियों की भाषा के अनुरूप थे। ये कब्बालियाँ फारसी अदब में समाहित शिष्ट भाषा से अनुप्रेरित थी। इन पर इस्लामी संस्कृति तथा भाषा का प्रभाव था, हिन्दी और फारसी एवं अरबी भाषा के आपसी सम्पर्को एवं प्रयोगों ने उर्दू भाषा के स्वरुप को स्पष्ट किया जिसमें शब्दों का बाहुल्य तो अरबी और फारसी का था किन्तु व्याकरणिक अनुशासन हिन्दी का ही था, क्रिया, कर्म एवं संज्ञाओं की स्थितियाँ हिन्दी के अनुरुप थीं। यहाँ हम यह भी कह सकते हैं कि इसी फारसी एवं हिन्दवी संस्कृति के समन्वयन ने हिन्दी के आज के रुप की नींव रखी थी।

दोहा छंद अन्यान्य भाषाओं से प्रभावित रहा है। अमीर खुसरों का दोहा द्रष्टव्य है-

खुसरों रैन सुहाग की जागी पिय के संग।
तन मेरा मन पियका, दोऊ भए इक रंग।।(6)

इसी तरह से शेख शरकुद्दिन बू-आली-कलन्दर का एक दोहा देखिए -

सजन सकारे जाएंगे और नैन मरेंगे रोय।
बिधना ऐसी रैन करि, भोर कदी ना होय।।(7)

इन दोहों में ब्रजभाषा का तत्काली रुप देखा जा सकता है। इनमें सकारे, कदी, जैसे रुढ शब्द तत्कालीन ब्रज भाषा की ओर ही संकेत करते हैं वैसे ये प्रयोग ब्रजभाषा के परिस्कृत रुप को ही व्यक्त करते हैं।

अमीर खुसरों के बाद अनेक दोहाकारों ने दोहा छन्द को विशेषताएँ प्रदान की हैं जिनमें नामदेव, कबीर, नानक, सूर, तुलसी, जायसी, रहीम, विहारी, मतिराम, भिखारीदास, मीराबाई, आदि का नाम उल्लेखनीय है। पूर्वी हिन्दुस्तानी में शेख अहमद खट्टू, शेख बहाऊद्दिन बाझन, खूब मोहंमद चिश्ती, काज़ी मेहमूद दरियाई, तथा मिराजी प्रसिद्ध थे और शाह बुरहानुद्दिन जानम आदि दोहाकार दक्षिण भारत तथा गुजरात में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इन दोहाकारों ने अपनी-अपनी क्षेत्रिय भाषाओं में एवं जनता की आम भाषा को दोहों में इस प्रकार प्रयोग किया कि यह दोहे जनभाषा के दर्पण बन पडे । इनमें खडी बोली, ब्रजभाषा अवधी, हरियाणवीं, गुर्जरी, बुन्देलखण्डी और उर्दू का मिश्रित स्वरुप देखने को मिलता है। इस भाषा का प्रयोग करने वालों में सैयद मुहम्मद जौनपुरी का नाम भी विशेष रुप से उल्लेखनीय है जो पूर्वी हिंदी में दोहों की रचना के साथ गुजराती में भी रचनाएं करते थे। डॉ. रानू मुखर्जी ने अपने शोध प्रबंध में गुजरात के प्रसिद्ध सूफी संतों का उल्लेख किया है जिन्होंने दोहा छंद में अपनी भक्ति भावना को प्रकट किया है।

यहां पर कुछ दोहाकारों के दोहे द्रष्टव्य हैं जिनमें वैविध्यपूर्ण भाषिक संरचना को देखा जा सकता है-

कबिरा खड़ा बजार में लिए लकूटी हाथ।
जो घर फूँके आपना, चलै हमारे साथ॥
- कबीर

नानक ननहे हो रहो जैसी ननही डूब।
सवएं घास चर जाएंगे, डूब खूब की खूब॥
- नानक

कनक-कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
या खाएं बौराएं नर, वा पाएं बौराय॥
- बिहारी

पाँचों वक्त नमाज़ गुजारुं दाईम पढ्डुम कुरान।
खाओ हलाल बोलों मुख साँचा राखो दुरुस्त इमान॥
- दरियाई

मन तेरौ माने नहीं डूबै विष की ओट।
'तेजा' नैयना जब खुले, लगे काल की चोट॥

- तेजानंद

दादू करणी हिन्दू तुर्क की अपणी–अपणी ठौर।
दोहू विधि मारग साधका चहूँ संतो की रह ओर॥

- दादू दयाल

खुसरों का समय हो या कबीर का पर एक बात तो निश्चय ही सामने आती है कि गेय पदों (गीतों) के लिए प्रमुखतः ब्रजभाषा का ही प्रयोग मिलता है-

उज्ज्वल बरन अधीन तन एक चित्त दो ध्यान।
देखत में तो साधु है, निपट पाप की खान॥(8)

इसी प्रकार कबीर के गेय पदों में भी ब्रजभाषा का सुन्दर रुप दिखाई देता है-

हौं बलि कब देखौगी तोहि (9)
अहनिसि आतुर दरसन कारनि ऐसी व्यापी मोहि
नैन हमारे तुम्हकौ चाहैं रती न मानै हारि ।

इसी प्रकार सूर के पदों में भी यही ब्रजभाषा की सुन्दरता देखी जा सकती है।

'दादू की बानी' अधिकतर कबीर की साखी से मिलती जुलती दोहों में संग्रहित है। इसकी भाषा मिली जुली पश्चिमी हिन्दी जिसमें राजस्थानी का मेल भी है। दादू दयाल के कुछ पदों में गुजराती पंजाबी और राजस्थानी भाषाओं का प्रयोग भी देखा जा सकता है-

घीव दूध में रमि रहा व्यापक सब ही ठौर।
दादू बकता बहुत है, मथि काढै ते और॥(10)

सूफी संत परम्परा के प्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने हिन्दी साहित्य में बहुत बड़ा योगदान दिया है। जायसी की भाषा बोलचाल में प्रचलित अवधी रही है। उन्होंने फारसी की मसनवी शैली में पद्मावत की रचना की हैं। जिसमें कथा को आगे बढाने के लिए दोहों का विशेष प्रयोग हुआ है। जायसी की अवधी भाषा का प्रयोग निम्न दोहे में प्राप्त होता है-

बरुनि–बान अस ओपहँ बेधे रन बन ढाख।
सौजहिं तन सब रोवाँ, पंखिहि तन सब पांख॥(11)

अवधी भाषा का परिष्कृत रुप तुलसीदास की भाषा में प्राप्त होता है। 'रामचरित मानस' के सृजन में अवधी भाषा का साहित्य में विशेष महत्व बढ गया है। तुलसीदास ने चौपाइयों के बीच में दोहा छंद का प्रयोग कर कथा को आगे बढाया है। यहाँ अयोध्याकाण्ड का एक दृश्य देखिए-

सजल नयन तन पुलक निज, इष्ट देउ पहिचानि।
परेउ दंड जिमि घर नितल, दसा न जाइ बखानि॥

दोहा के प्रति तुलसीदास की विशेष रुचि रही है। अतः उन्होंने पृथक से 'दोहावली' की रचना की है जिसमें भक्ति की सुगमता बडे ही मार्मिक ढंग से निम्न दोहे में सूचित दिखाई देती है-

कि तोहि लागहिं रामप्रिय, की तु राम प्रिय होहि।
दुइ मँह रुचै जो सुगम सोंइ, की बे तुलसी तो हि॥[12]

दोहा छंद का नाम आते ही जनमानस में रहीम का नाम साकार होना स्वाभाविक है। क्योंकि रहीम खास से लेकर सर्व-साधारण तक अपने दोहे के लिए प्रसिद्ध हैं। उनकी ब्रज एवं अवधि दोनों ही काव्य भाषाओं पर अच्छी पकड रही है। उनकी 'बरवै नायिका भेद' बडी ही सुदर अवधी भाषा में है। साथ ही रहीम की दोहावली में भाषा का रुप देखा जा सकता है-

ज्यों रहीम गति दीप की, कुल कपूत की सोय।
बारे उजियारो करै, बढ़ै अंधेरो होय॥[13]

इस प्रकार -

रहिमन वे नर मर चुके जे कहुं माँगन जाहिं।
उनते पहले वे मुएं जिन मुख निकसत नाहिं॥[14]

कवि वृंद के सूक्ति परक दोहों में भी बृजभाषा का रुप दिखाई देता है। कवि वृंद के अधिकतर दोहे लोकमानस में प्रसिद्ध हैं। वृंद सतसई के कुछ दोहे दृष्टव्य हैं-

भले बुरे सब एक सम, जौ लौं बोलत नाहिं।
जानि परत हैं काग पिक, ऋतु बसंत के मांहिं॥[15]

हितहूँ की कहिए न तेहि, जो नर होय अबोध।
ज्यों नकटे को आरसी होत दिखाए क्रोध॥[16]

श्रृंगारी कवि रसनिधि का 'रतन हजारा' दोहा संग्रह है। इनके दोहों में फारसी कविता का भाव व चतुराई दिखाने की कोशिश की है। उनके कुछ दोहे द्रष्टव्य हैं-

अद्भुत गति यहि प्रेम की बैनन कही न जाय।
दरस-भूख लागै दृगन, भूख हिं देत भगाय।।(17)

लेहु न मजनू-गोर ढिंग, कोऊ लैला नाम।
दरदवंत को नेकु तौ लेन देहु बिसराम।।

इसी परम्परा में 'दयाराम' का नाम भी उल्लेखनीय हैं। दयाराम बिहारी सतसई से अत्यधिक प्रभावित थे साथ ही उन्हे सतसई का ज्ञान भी था। गुजराती काव्य साहित्य में उनसे पहले सतसई की रचना किसी ने भी नहीं की वैसे तब तक बिहारी सतसई का गुजराती भाषा में अनुवाद अवश्य हो चुके थे। दयाराम सतसई ब्रजभाषा में रचित है अतः दयाराम ने गुजराती जनता को इस ग्रंथ का काव्यामृतपान कराने के लिए स्वयं ही गुजराती भाषा में इसकी सरल सुबोधिनी टीका भी लिखी थी। जोकि आख्यान शैली में है। दयाराम सतसई के दोहों की भाषिक संरचना इस प्रकार है-

श्यामा श्याम पुकारती श्यामा रटते श्याम।
अली अजंमौ आज बड़ जुगल जपत निज नाम।।(18)

दोऊ अटारी पीठ दे किए दरस आदर्ष।
मिलिकर दै दै चुटकि त्रय पिय तिय उदयों हर्ष।।(19)

इस तरह यह दोहा छंद किसी एक ही विशिष्ट आंचलिक भाषा में समाविष्ट न होकर आंतरप्रांतीय रुप में अथवा राष्ट्रीय स्तर पर लोक भोग्य रहा है। इसे हम भारत की जनमानस से संलग्न एक ऐसा छंद मान सकते हैं जो भाषिक संरचना के रुप में अनेकानिक बोलियों, भांषाओं से सम्बद्ध रहा है। इस कारण हिन्दी के आधुनिक दोहा संग्रहों में इन तमाम (पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, ब्रज, अवधी, गुजराती, मराठी, सिंधी, पंजाबी, उर्दू, बुंदेली, आदि) आंचलिक भाषाओं का प्रभाव देखा जा सकता है।

हमारा अलोच्य विषय आधुनिक हिन्दी के दोहों को लेकर अग्रसर होता है जिनमें भाषिक प्रभाव के लिए एक विस्तृत पूर्व भूमिका का अनुभव किया जा सकता है। सर्वप्रथम तो इसकी रुप सज्जा एवं अभिव्यंजना पर बृजभाषा की प्रवृत्ति का एवं उसकी समग्रता का प्रभाव परिलक्षित होता है तथा साथ ही इसका बहुत कुछ वर्ण्य भी प्रकारान्तर से परम्परा से ही अधिग्रहित हुआ है।

हिन्दी खड़ी बोली का जन्म या उसके विकास की पृष्ठ भूमि ब्रजभाषा से ही अग्रसित हुई है जैसा कि कहा जा चुका है कि हिन्दी खड़ी बोली की व्यवस्थित प्रदिस्ठा का समय सौ सवा सौ साल से अधिक नहीं है। अतः इसके प्रारम्भिक काल में ही हिन्दी खड़ी बोली की शुद्धता एवं उसके

परिमार्जन की वात करना औचित्य पूर्ण नही है, हिन्दी खरी बोली के विकास क्रम में बृजभाषा की प्रकृति एवं उसकी शब्द सम्पदा का सहयोग उल्लेखनीय रहा है। जहाँ हम दोहा छंद के भाषिक स्वरूप पर अन्यान्य बोलियों एवं भाषाओं के प्रभाव की चर्चा करेंगे।

विभिन्न भाषिक प्रयोग

आलोच्यकाल के दोहा छंद की मुख्य भाषा परिमार्जित हिन्दी है जो अपने अभिजातीय संस्करणों के कारण नवीनतम भाषिक सामर्थ्य को लेकर प्रकट हुई है। हलाँकि दोहा छंद में भाषा की भूमिका अधिक तर व्यंजक ही रही है। जहाँ व्यंग्यार्थ के माध्यम से कथ्य के अर्थ को विस्तार दिया जाता रहा है। किन्तु फिर भी अधुनातम भाषा संस्कारों के साथ इन दोहों में आंचलिक बोलियों के शब्दों का पूर्वाग्रही रुझान भी यत्र-तत्र देखा जा सकता है। जो दोहा छंद के अभीष्ठ कथ्य को चमत्कृति प्रदान करता रहा है। ब्रजभाषा, अवधी, बुन्देलखण्डी, पूर्वी, मैथिली, राजस्थानी आदि का बहुत बडा हस्तक्षेप इन दोहों के भाषिक संरचना पर आरोपित रहा है। जैसा कि कहा जा चुका है कि यह ऐक लघु वृत्तीय वर्णवृत्त छंद है जो अपनी सीमित मात्रिक संरचना में सिमट कर ही अपने कथ्य को सम्पूर्णता प्रदान करता है। इस छंद की यह विशेषता है कि इसका प्रयोग मुक्तक काव्य के रुप में ही हुआ है। आलोच्य काल के दोहा छंदों में भाषिक गठन में रचनाकारों ने कुछ अभिनव शब्द संयोजन भी किये हैं। संज्ञा वाची शब्दों को क्रिया वाची में प्रस्तुत किया है। तो कहीं क्रिया वाची शब्दों को संज्ञा वाची के रुप में भी प्रयोग किया है।

अधिकांश कवियों ने भाषा की शुद्धता पर तो बल दिया है किन्तु शब्द भण्डार के अवगाहन में इतर भाषिक शब्दों को अपनाने में उन्होंने कोई दरिद्रता प्रदर्शित नहीं की है। यही कारण है कि दोहा छंद में हिन्दी खड़ी बोली में आत्मसात् करते हुए अनेक आंचलिक भाषाओं के साथ-साथ अरबी फारसी और अंग्रेजी के लोक प्रचलित शब्दों का खुलकर प्रयोग हुआ है।

भाषिक संरचना के संदर्भ में यह भी कहा ज़ा सकता है कि रचना कार ने जब छंद का निर्माण किया तब उसके सामने कथ्य का महत्व अधिक था। शब्द संयोजन का नहीं कहीं कहीं अर्थ चमत्कृति पैदा करने के लिए रचनाकारों ने अप्रचलित तथा संयोजित शब्दों के भी प्रयोग किये हैं-

जैसे :-

कशाघात की पीठ पर, अब तक बने निशान।
इतिहासों के पृष्ठ पर, अंकित हैं अपमान।।(20)

यहाँ कसा घात शब्द साधारणतः अल्पप्रयोग शब्द है। किन्तु अर्थव्यंजना के लिए इस शब्द का प्रयोग बहुत ही सटीक हुआ है। इसी तरह-

मज़हब का बाँटा गया सबको महाप्रसाद।
राजनीति ने कर दिया कटुता को आजाद।।[21]

इस दोहे में मजहब शब्द साभिप्राय प्रयुक्त हुआ है। एक अन्य स्थान पर इसी तरह

बन्दूकों की नोक पर, शान्ति रही चुपचाप।
कर्फ्यू में चलते रहे, बर्बर क्रिया-कलाप।।[22]

यहाँ बन्दूक, कर्फ्यू, बर्बर शब्द अन्य भाषाओं में प्रयोग होने पर भी साभिप्राय और सभाषिक भूमिका का निर्माण करते हैं। एक और दोहा देखिए-

रैली थी सद्भाव की जहाँ शहर में खास।
कुत्ते रहे घसीटते, वहीं भिक्षु की लाश।।[23]

यहाँ रेली, शहर, खास, भिक्षु जैसे शब्द कथ्य की व्यंजना को अग्रसर कतरे हैं। रचनाकार छंद को अधिक जनाग्रही बनाने के लिए भी इस प्रकार के लोक प्रचलित शब्दों का प्रयोग करता रहा है। जैसे -

बम चाकू बन्दूक की खुलती रोज़ दुकान।
पर मेडीकल लीव पर, चली गयी मुस्कान।।[24]

कहीं-कहीं आधुनिक सम्पर्क की भाषा के नवीन शब्दों को भी रचनाकार ने प्रयोग किया है जैसे-

लिए हवाला आ गया बादल करता शोर।
यों चमकी नभ बीजुरी, दिखे छिपे कुछ चोर।।[25]

अथवा

विसंवादिता बट रही, संवादी स्वर मौन।
बंद किबाड़ो को भला, खोलेगा अब कौन।।[26]

देश दिख रहा है मुझे डाँगर सा लाचार।
मस्त नोंचने में सभी, कुत्ते गिद्ध सियार।।

यहाँ डाँगर शब्द तथा पिछले दोहे में विसंवादिता शब्द अर्थ व्यंजना की सही भूमिका का निर्वाह करते हैं। कहीं-कहीं किसी शब्द को अधिक प्रभाव प्रदान करने के लिए भी ध्वंन्यात्मक शब्दों का संयोजन किया गया है। जैसे -

मह-मह-मह-मह मेहकता गोरी तेरा गात।

और

बहका-बहका-सा लगे, सब-का-सब व्यवहार॥

एक और उदाहरण देखिए-

अंग-अंग से रस झरे, खूशबू-खुशबु साँस ।
गोरी का तन क्या हुआ, मानो खिला पलास॥(27)

यहाँ सांस का खूशबु-खूशबु होना और पलास का खिलना अर्थ संगति में सार्थकता का निर्वाह करते हैं। कहीं-कहीं पर अत्यंत ग्राम्य और देशज शब्द कहावतों और मुहावरों से सम्बद्ध हैं जैसे :-

गड़ही मे भी खिल गये, कमल कुई रतनार।
घूरे पर भी जल गये, बहुत यहाँ कचनार॥(28)

जहाँ कवि भाषा के प्रति सावधान है वहाँ दोहा छंद की भाषा परिनिष्ठित और तद्भव शब्दों से संयोजित है जैसे -

भू से मिलने का जलद, करता जब उद्योग।
खुद ही छिप कर चंद्रमा, रच देता संयोग॥(29)

यहाँ दोहा में ''भू'' जलद, संयोग जैसे शब्दों को तत्सम् शब्दावली के द्वारा कथ्य को गेयता के साथ रागात्मक अभिव्यक्ति के साथ प्रस्तुत कर दिया है जिससे दोहा में अर्थ के साथ भाषा का प्रयोग स्वभाविक बन पड़ा है।

दोहा के भाषिक परिवेश पर आधुनिक दोहाकार उतना ध्यान नहीं देता जितना कि कथ्य को सहज गेय अभिव्यक्ति प्रदान करने में दोहा के सृजन में शब्दावली चाहे जिस भाषा की हो परंतु कथ्य की स्पष्टता अवश्य हो जाती हैं। जैसेः-

थानेदार बने हुए, अपने सनम हनोज़।
फिर खलीलखाँ फाख्ता, क्यों न उड़ायें रोज॥(30)

यहाँ दोहा में अरबी फारसी की शब्दावली (सनम, हनोज़, खलीलखा, फाख्ता, रोज) को प्रस्तुत करके एक रोज मर्रा की स्वभाविक कथ्य को प्रस्तुति मिली है जिसे कवि ने भाषिक चमत्कार के साथ प्रस्तुत किया है। कहीं-कहीं पर तो कवि ने एक ही दोहा मे अन्यान्य भाषाओं को समेट लिया है और कथ्य की प्रस्तुति को स्वभाविक रुप देकर प्रस्तुत कर दिया है। जैसे-

वाइफ़ से पत्नी भली, अर्पित करैं सनेह।
वाइफ में वा का भरम इफ़ का भी संदेह॥(31)

यहाँ कवि ने अंग्रेजी हिन्दी उर्दू जैसे भाषिक शब्दों का प्रयोग कर दोहा छंद में अन्यान्य बोलियों का प्रयोग किया है।

इसी प्रकार से -

धनपतियों के नाम का, कैसा पुण्य-प्रताप।
टा-टा टा-टा का करें, चलते-चलते जाप ॥(32)

प्रस्तुत दोहे मे धनपति जैसा देशज शब्द और पुष्प-प्रताप जैसीं तत्सम् शब्दावली और वही अंग्रेजी के टा-टा, टा-टा जैसे शब्दों का प्रयोग कथ्य को स्पष्ट करने के लिए स्वभाविक बन पडा है।

जैसा कि कहा जा चुका है कि दोहा के गठन का व्याकरणिक नियम परम्परित ही है। परन्तु दोहा के द्वारा अभिव्यक्ति के जो विषय हैं वे अधुनातम समाज से जुडे हैं। जिन्हे स्पष्ट करने के लिए भाषा पर जोर नहीं दिया गया है। कवि का मूल उद्देश्य कथ्य की लयादित प्रस्तुति ही रहा है। जीवन, समाज की विसंगतियों विषमताओं को बिना किसी चमत्कार प्रदर्शन के प्रस्तुत किया गया है। जिसमें भाषिक संरचना पर कोई अंकुश नही लगा है। जैसे-

बम-बम भोला नाथ का करो न जय जयकार।
डर है बम-विस्फोट का आतंकित सरकार॥(33)

मध्यकालीन दोहा में जितनी शब्दावली का प्रयोग किया गया है। उससे भी अधिक सामयिक दोहा में शब्दावली का प्रयोग हुआ है। मध्यकालीन कवियों की भाँति सामयिक दोहाकारों की किसी चमत्कार प्रदर्शित करने का मोह नहीं रहा है। अतः उन्होंने सामयिक दोहा के गठन में आम बोल चाल तक की शब्दावली का भी प्रयोग कर दिया है जैसे-

तेरे ही संधान में जुटा रहूँ दिन रात।
धुआँ-धुआँ होता रहूं जल-जलकर निर्वात॥(34)

जुटा, धुआँ-धुआँ जैसे लोक, प्रचलित शब्दों का बडी ही सहजता से प्रयोग हुआ है। साथ ही धुआँ-धुआँ और जल-जल जैसे शब्दों का प्रयोग करके अर्थ में भी परिवर्तन लाया गया है। जो कवि की अपनी कुशलता को प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार-

दीन गया, दुनिया गयी, बची न कोई बाट।
यह तुमने क्या कर दिया, लाकर औघट घाट।।(35)

यहाँ बाट, औधट घाट, जैसी भाषिक शब्दावली परम्परित दोहा साहित्य में भी मिलती है। जो देशज अभिव्यक्ति की ओर इंगित करती है।

कहीं-कहीं पर कवि ने इतिहास पुराणों से कुछ प्रतीक, बिम्ब को प्रदर्शित करती भाषिक संरचना प्रस्तुत की है। जिसमें परिमाण का संकेत मिलता है जैसे-

रचे अप्सरा-चाह ने संवादों के गीत।
किन्तु पुरुरवा-सा समय गया धूप में बीत।।(36)

यहाँ पर चाह तो है पर कैसी और कितनी यह बताने के लिए कवि अप्सरा शब्द का प्रयोग करता है तथा समानता पैदा करने के लिए द्वितीय पंक्ति में पुरुरवा शब्द का प्रयोग करता है। दोहा सृजन की यह व्यंजना कथ्य को स्पष्ट करने में स्वभाविक बन पड़ी है।

इसी प्रकार से-

राजमहल के द्वार पर शहनाई के गीत।
होरी की बिटिया हुई है दहेज की रीत।।(37)

यहाँ राजमहल और होरी की बिटिया, क्रमशः अमीर और गरीब की स्पष्टता करते हैं। कवि ने साहित्य से भी ऐसे शब्दों का उपयोग किया है। जो हर जगह अपनी एक रुढ परिभाषा को प्रस्तुत करते हैं इसी प्रकार अन्य दोहा देखते हैं-

दुर्योधन होते सदा राजमहल के मंत्र।
अंधों पर बरसा रहे लाठी शासन तंत्र।।(38)

सामयिक परिवेश में सृजित प्रत्येक दोहा भाषिक संरचना में विभिन्नता लिए हुए हैं। अभिव्यक्ति को सटीक बनाने के लिए कवि किसी भी भाषा के शब्द को अपनाने में नहीं हिचकिचाते। जैसे-

लंपट मौसम हो गये, वेश्या हुए सुहाग।
चिह्न सभ्यता के हुए, हर चेहरे के दाग।।(39)

दोहा के कथ्य में सारे अर्थ विपरीत वतार्य गये है। और लंपट जैसा शब्द प्रयोग किया गया है। जो सामान्यतः साहित्यिक शब्दावली में नहीं आता फिर भी कथ्य को प्रस्तुत करने में दोहा का प्रत्येक शब्द अपनी निजी परिभाषा को प्रस्तुत करता है । इसी तरह एक अन्य दोहा द्रष्टव्य है-

कच्ची बखिया की तरह ले मन को समझाय।
ज़रा-ज़रा सी बात पर, सीवन खुल-खुल जाय ।।[40]

यहाँ पर कवि ने 'बखिया' शब्द का वर्णन प्रथम पंक्ति में किया है। शब्द तो आम बोलचाल की ग्राम्य भाषा का है। वस्तु कथ्य को द्रष्टान्त देने के लिए इस शब्द का यहाँ पर सटिक प्रयोग मालुम पड़ता है। जहाँ ज़रा-ज़रा जैसी उर्दू शब्दावली में सीवन जैसे देशज शब्द को मिलाकर लोकभाषाओं के प्रयोग से दोहा के कथ्य को सहज ही अभिव्यक्ति मिली है।

इसी प्रकार से सामयिक दोहा साहित्य में व्यंग्य की प्रधानता स्पष्ट देखी जा सकती है। मानव जीवन का कोई भी विषय रहा हो। आधुनिक दोहाकारों ने बड़ी ही व्यंग्यपूर्ण शैली में और व्यंग्यात्मक भाषा का उपयोग करके कथ्य को प्रस्तुत किया है। जो दोहा के छोटे से कलेवर में विशेष आकर्षण उत्पन्न कर सका है। जिसमें भाषा का स्वरुप कुछ इस प्रकार से है-

कुर्सी अपने बाप की, यदि मौसम अनुकूल।
कुर्सी के नीचे छिपें देख धुंध औ धूल ।।[41]

अभिव्यक्ति को सहज बनाने के लिए साथ ही दोहा की मात्रात्मक गरिमा बनाये रखने के लिए शब्दों के साथ तोड मरोड़ भी की जाती है। अनेक दोहाकार छंद में मात्राओं की गणना सही बनाये रखने के लिए शब्द को तोडकर लय प्रदान करके दोहे को पूरा भी कर देते हैं। जैसे उपर्युक्त दोहा में और शब्द को पूरा न लिखकर 'औं' से काम चला लिया है। वैसे इस प्रकार की भाषिक शब्दावली ग्राम्यांचल में विशेष रुप से व्यवहृत होती है।

इसी तरह एक अन्य दोहा द्रष्टव्य है-

कभी ताल थी किन्तु अब, है पोखर औ कीच।
मगरमच्छ भीतर पले लेते सबको खींच ।।[42]

यहॉ भी दोहा में देशज, ग्राम्य शब्दावली के साथ कथ्य को स्पष्टता प्रदान की गई है। पोखर, कीच, खींच, ताल आदि शब्द लोकांचल भाषा के प्रयुक्त हुए हैं। इसी तरह से सामाजिक विषमताओं को प्रस्तुत करता हुआ निम्न दोहा कथ्य की दृष्टि से सटीक है जिसे विभिन्न भाषिक

शब्दों का जामा पहनाया गया है-

दोयम दर्जा पास हैं मंत्री पीलालाल।
एम.ए. कर हम्माल हैं लेकिन हसन जमाल।।[43]

यहाँ उर्दू, हिन्दी, अंग्रेजी एवं देशज शब्दों का उपयोग करके कवि ने समाज की असंगता को प्रस्तुत किया है। कथ्य को स्पष्ट करने में सामयिक दोहा बडे ही सहज और सरल हैं। क्योंकि इनमें आम बोलचाल की स्वभाविक शब्दावली का विशेषतः प्रयोग हुआ है।

भाषिक संरचना और अभिव्यक्ति की मार्मिक छटा को लिए हुए निम्न दोहा देखिए-

क्या सपने क्या लोरियाँ, खाली-खाली पेज।
जिनकी नींदों को मिली फुटपाथों की सेज।।[44]

यहाँ पर जहाँ एक और संस्कृत की शिष्ट शब्दावली है वहीं पेज, फुटपाथ जैसे अंग्रेजी भाषा का प्रयोग भी हुआ है। साथ ही लोरियाँ, नींद जैसे देशज शब्द भी है। वस्तु प्रत्येक भाषा का शब्द अपना विशेष महत्व रखते हुए कथ्य को मार्मिकता प्रदान करता है। यह देखकर निश्चित ही कहा जा सकता है कि हिन्दी का शब्द भण्डार अब बहुत बढ गया है। सामयिक साहित्य मानव जीवन के साथ जुड़ा हुआ है अतः उसमें जीवन की स्वभाविक अभिव्यक्ति के दर्शन होते हैं-

सम्बन्धों के वस्त्र भी हुए इस तरह तंग।
मिले हर सड़क, हर गली लोग उघारे अंग।।[45]

यहाँ दोहे में जहाँ वस्त्रों की बात आई है। तो उसका अंग के साथ सम्बंध भी स्वभाविक ही होगा अतः ''तंग'' शब्द और ''अंग'' शब्द की यति भाषिक एवं शाब्दिक संरचना की दृष्टि से उचित बन पड़ी है।

हिन्दी साहत्यि के आदिकाल से लेकर आजतक दोहा साहित्य अनेक भाषिक बंधनों में व्यक्त होता रहा है। इस छंद में प्रत्येक भाषा के शब्दों को सहज ही धारण कर लेने की क्षमता विध्यमान है। आधुनिक दोहा साहित्य भी वैसे तो हिन्दी की खड़ी बोली में सृजित हुआ है। परन्तु परिस्थितियों के अनुकूल इतर भाषायी शब्दावली का प्रयोग यत्र-तत्र अवश्य ही देखा जा सकता है। आज भी कवि अपनी रचनाओं में ब्रज, अवधी जैसी सशक्त लोकभाषा का मेल हिन्दी की खड़ी बोली के साथ स्वभाविक ही कर देता है। जैसे-

जा रसना को राम तजि भोजन सों अनुराग।
सो रचना है श्वान सम लगै इसी क्षण आग।।[46]

उपर्युक्त दोहा छंद में लोकभाषा के अनेक शब्दों को स्पष्ट ही देखा जा सकता है जिसके साथ तत्सम् शब्दावली का प्रयोग भी हुआ है, रसना, श्वान, आदि शिष्ट शब्दावली के सब्द है। ऐसा ही एक अन्य दोहा दृष्टव्य है -

जीभ जरै जीवन गरै, कोठी होय शरीर।
जीवन में यदि रंच भर, रुचें न सिय-रघुवीर॥(47)

आध्यात्मिक भावों को समेटे हुए यह दोहा अपने कथ्य की प्रस्तुति में सतप्रतिशत सफल हुआ है। इसके पहले के दोहा में जहाँ जीभ की जगह रसना शब्द का प्रयोग किया है। दोनों की भाषा भिन्न है। परन्तु प्रसंग एवं भाव को प्रस्तुत करने में दोनों ही शब्दों की प्रासंगिकता उचित है। इसके अतिरिक्त, जरै, होय, रुचें, रंच, जैसी शब्दावली खड़ी बोली हिन्दी से भिन्न है। फिर भी खडी बोली हिन्दी के दोहा साहित्य में प्रयुक्त हुई है। और अर्थ को स्पष्ट करने में अहम् भूमिका निभाती है। भाषिक शब्दावली की यह योजना हिन्दी भाषा में प्रयुक्त एक बहुत बडे शब्द भण्डार की ओर संकेत करती है।

इन साठोत्तरी दोहों में कहीं तल्ख स्थितियों का बयान है तो कहीं मूल्यों के टूटने की पीड़ा, कहीं सत्ता और व्यवस्था के प्रति आक्रोश है । तो कहीं बदलती हुई संस्कृति, पारिवारिक विच्छेद और महानगरीय सभ्यता के द्वंद्वात्मक चित्र हैं। मानवजीवन जगत से जुडे हुए कवियों ने स्वभाविक शब्दावली और भाषा का प्रयोग किया है। दोहा जिस परिस्थिति को व्यक्त करता है उसी से संदर्भित भाषा का प्रयोग भी सहज हो जाता है जैसे-

होटल, महफ़िल, कैबरे, फिल्म और रोमांस।
महानगर को बाँटते ये मस्ती उल्लास॥(48)

अब यहाँ उपर्युक्त दोहा में व्यंग्यात्मक शैली में महानगरीय जीवन शैली का वर्णन किया गया है। इसमें अंग्रेजी, उर्दू, देशज हिन्दी आदि बोलियों के स्वभाविक प्रयोग को देखा जा सकता है। अंग्रेजी भाषा के शब्द फिल्म, और रोमांस उच्च वर्गीय जीवन शैली की ओर निर्देश भी करते हैं। अतः भाषा प्रयोग की दृष्टि से दोहा अपने अभीष्ट अर्थ को स्पष्ट करने में सफल रहा है। इसी प्रकार से एक अन्य दोहा भी द्रष्टव्य है-

झोंपड़पट्टी-झुग्गियॉ, अतिक्रमण के भाग।
महानगर की देह के ये बदसूरत दाग॥(49)

इसी प्रकार से भाषिक प्रयोग की दृष्टि से निम्न दोहा भी द्रष्टव्य है। जिसमें अरबी, फारसी, देशज, हिन्दी आदि शब्दावली का प्रयोग हुआ है -

सबकी घिग्घी-सी बंधी, सनकी हुआ नवाब।
देश बना क्यों हादसा, माँगे कौन जवाब॥(50)

यहाँ पर कवि ने घिग्घी सनकी जैसे आम बोलचाल की भाषा के शब्दों का प्रयोग साहित्य में किया है। जो सामान्यता लिखित रुप में बहुत कम मिलते हैं। इसी प्रकार से एक अन्य दोहा भी द्रष्टव्य है-

कड़की के इस दौर में जीना हुआ मुहाल।
मुश्किल है दो जून की, सूखी रोटी दाल॥(51)

यहॉ पर मुहाल कडकी, ''जून'' जैसे शब्दों का प्रयोग विषय की अभिव्यक्ति और परिवेश को केन्द्र में रखकर किया गया है। जो अर्थ स्पष्ट करने के साथ साथ दोहा छंद के महत्वपूर्ण गुण गेयता को भी सुगम बनाते हैं।

इसी प्रकार के कुछ अन्य दोहा भी द्रष्टव्य हैं जिनमें विविध भाषाओं की शब्दावली को देखा जा सकता है -

लाल किले के शीश पर, बौने चढे अनाम।
बाअदब, बामुलाहज़ा, दिल्ली तुझे सलाम॥(52)

या फिर-

जब से आया देश में नौसिखिया जनतन्त्र।
फूंक दिया जैसे कोई बैर-फूट का मंत्र॥(53)

इसी तरह

उमस-उदासी सिर झुका, बैठे ढाले फोन।
चिट्ठी-पत्री अब यहाँ भैया डाले कौन॥(54)

''दोहा'' जमीन से जुड़ा हुआ लोकाग्रही छंद है। अतः इसकी अभिव्यक्ति में अन्यान्य भाषाओं का मिलना भी हर जगह इसकी पैठ को स्पष्ट करता है।

जैसा कि कहा जा चुका है कि दोहा छंद की एक रागात्मकता गठन प्रक्रिया है जो भारतीय लोक प्रांगण में शताब्दियों से गुनगुनाई जाती रही है। यह लघु राग लोक कण्ठ में इस तरह रच-पच गया है कि साधु-संयासियों, मंगताओं-भिखारियों, कवियों साहित्यकारों, गृहस्त महिलाओं, बालकों, गुरुओ और शिष्यों में तथा संयुक्त परिवार के गाढस्त वातावरण में जैसे धुल मिल गया है। बात

रामचरित मानस के दोहों की रही हो, बिहारी, कबीर, रहीम रसखान आदि के दोहों की रही हो, चाहे अन्यान्य रीति कालीन आचार्य कवियों के लक्षण ग्रंथों में समाहित लक्षण उदाहरणों को व्यक्त करते दोहों की रही हो। इस छंद की चमत्कृति और लोकाकर्षण सदैव अनुगूंजित रही है।

दोहा छंद अनेक भाषाओं और बोलियों से गुजरता हुआ खड़ी बोली में प्रवेश हुआ। अतः विभिन्न भाषाओं का प्रभाव भी दोहा पर रहा है। प्रत्येक भाषा की अपनी एक शैली होती है उसकी ध्वनि होती है। किसी भाषा के शब्दों में कोमलकान्त शब्दावली का प्रयोग होता है। तो किसी भाषा के बदल जाने से शैली में परिवर्तन अवश्य आ जाता है। परन्तु अर्थ ज्यों का त्यों ही रहता है। काव्य में शब्दों के ही द्वारा यति मिलाई जाती है। जिससे लयता का संचार होता है। मगर अर्थ विषयानुकूल ही रहता है जैसे-

सत्ता लॉलीपाप है चूस सकै तो चूस।
अन्तकाल पछताएगा, ओबे! ओ फुकनूस।।[55]

उपर्युक्त दोहों के द्वितीय चरण में ''चूस'' शब्द की यति मिलाने के लिए चौथे चरण के अन्त में ''फुकनूस'' शब्द का प्रयोग किया गया है। जो किसी सत्ताधारी नेता के लिए तो उचित है। परन्तु साहित्यिक शब्द नहीं है। यह आम बोलचाल में व्यवहृत देशज शब्द है। फिर भी ओ बे!ओ के साथ सार्थक अर्थ दे रहा है। इसी प्रकार कुछ और दोहा देखे जा सकते हैं-

रिश्वत अब लेने लगे स्वयं अलोपीदीन।
सभी दरोगा ज़ेब को भरने में तल्लीन।।[56]

समसामयिक यथार्थ के साथ जुडे हुए भावों को व्यंग्यात्मक रुप देकर उनमें परम्परित कहावतें सुक्तियों का प्रयोग करके विभिन्न भाषाई शब्दों का प्रयोग आधुनिक दोहा साहित्य में देखा जाता है। कथ्य को प्रभावी बनाने में कहावते महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। जैसे-

अरे चीनियो! हिन्द को, खाकर चले अफीम।
नशा हिरन हो जायगा, हम हैं कडुए नीम।।[57]

यहाँ अफीम, नशा, हिरन, कडुए नीम, आदि कई भाषाओं की शब्दावलियां है। जो अपना एक रुढ अर्थ भी प्रदर्शित करती हैं। यहाँ कवि द्वारा सम्प्रेषित भाव सहज ग्राह्य बन पडे हैं। इसी प्रकार एक अन्य दोहा देखिए-

भारत पर थे चढ चले हुए नशे में चूर।
कहो, लौट कैसे चले थे खट्टे अंगूर।।[58]

प्रस्तुत दोहा की भाषिक संरचना में चूर, लौट, जैसी देशज शब्दावली के साथ खट्टे अंगूर वाली कहावत विशेष उल्लेखनीय है। और ''भारत पर थे चढ़ चले'' का अर्थ है भारत पर अपना अधिकार प्राप्त करना। यह शब्दावली कहावत रुप में दिखाई देती है। सम्यक् दृष्टि से देखें तो कवि का रुझान भाव व्यंजना पर अधिक रहा है।

इसी प्रकार से दोहा को विभिन्न भाषिक व्यंजनाओ के द्वारा कवियों ने अपने मंतव्यों को सुधि पाठक के सामने रखा है। आज समाज में अंग्रेजी भाषा का प्रभाव निरंतर बढता जा रहा है। हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेजी शब्दावली का प्रयोग होने लगा है। कहीं-कहीं पर तो हिन्दी और अंग्रेजी भाषाओं के शब्दों में कोई दूसरा अर्थ तक नही निकल पाता और समाज ऐसे शब्दों को सहज अपनी भाषा में अपना लेता है।

हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी के प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता। साथ ही कवियों ने एक चमत्कारिक आकर्षण भी उत्पन्न करने के लिए हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया है। जैसे-

जाग-जाग कन्फ्यूशियस, तेरे सुत कन्फ्यूज।
जीवन को कर लूज ये, करें मरण को चूज।।[59]

प्रस्तुत दोहों में हिन्दी भाषा के साथ अंग्रेजी भाषा का सुमेल आकर्षक बन पडा है तथा अर्थ व्यंजना में नव्यता प्रस्तुत करता है। हिन्दी भाषा के विकास के ये सोपान दोहा साहित्य में आकर्षण पैदा करते हैं।

इस प्रकार साठोत्तरी दोहा साहित्य अभिव्यक्ति की नई छटा लेकर प्रस्तुत हुआ है। जहाँ पर प्रत्येक कवि ने अपनी मातृभाषा को खड़ी बोली हिन्दी में सहज ही मिश्रित करके कथ्य को धारदार बनाकर प्रस्तुत किया है। दोहा को समझने पढने में अधिक परिश्रम का अनुभव नहीं होता और भावाभि व्यक्ति की निरन्तर एक लयता बनी रहती है। अपने आस पास प्रयुक्त विभिन्न भाषिक शब्दावली का प्रयोग इन दोहों में सहज ही मिल जाता है। कुछ शब्द दृष्टव्य है-

बिसात	दुराव	पैगाम
करतूस	लहू	लँगोटिया
शबनम	आतंक	धाम
रौशनी	पीर	बदहाल
अचानक	बॉयस्कोपी	भयभीत

तकरार	प्रपंच	माफिया
जंग	तूफान	बेरुखा
उसूल	आईना	बदनाम
भीड़-भाड	डाकिया	रुह
अजब	पोशाक	शायरा

इसी प्रकार तत्सम् शब्दावली के भी कुछ शब्द दृष्टव्य हैं-

शीतल	पथ	निपुण
धर्म	दुश्चक्र	दाता
मर्म	सेतु	सत्कार
कोप	दृष्टि	जनक
प्रीति	दीप	निर्मूल
तरु	मनुज	विद्रूप
खंडित	विष	तुच्छ
सिंहासन	शाख	स्वर
नित्य	चीर	हर्ष
जल	दृश्य	कपोल
कंचन-मृग	पूजागृह	लोचन
अंक	भिक्षु	मधुव
युवत्त	शीश	चतुर्दिक
बन्धुता	प्रणय	कुसुम
दर्पण	दन्त	जननी
प्रतिवाद	परिधान	मीन
वाद	धैर्य	सघन
संवाद	केश	भृकुटि
उन्मेष	भाल	उदित
त्रस्त	नृत्य	नीलाम्बर
संत्रास	अभिसार	दिनकर
समकक्ष	चरण	राकेश

तर	गणिका	भुजंग
विटप	विषमता	अम्बर
मनसिज	शिशु	पंकज
ऋतुराज	अभियोग	मंत्र

इनके अलावा कुछ अल्प प्रचलित देशज शब्दों का प्रयोग भी दोहा साहित्य में हुआ है। कुछ देशज शब्दावली दृष्टव्य हैं-

ताकती	बोझिल	चूक
खदेड	हुडदंग	गठरी
उजियार	तू तू मैं मैं	रत्ती
थोथे	फाँकती	नुकीली
चौखट	मींच	पगलाये
बीहड़	गेहुआ	बाँचती
होड	अटपटा	तैराक
परछाई	लीप	करारे
शीशा	कटोरा	आँच
लीलती	छापता	करतूत

इसी प्रकार से विदेशी भाषा की मिश्रित शब्दावली का प्रयोग श्री दोहा साहित्य में हुआ है। जैसे-

फिफ्टी-फिफ्टी	जारजेट	ड्यूटी
फितरत	टिपटाप	लिफ्ट
स्टोरी	लिफाफा	लीव
चार्मिंग	करंट	मेडिकल
ब्रान्ड	बम	अश्लील
वसीयत	सिग्रेट	ममी
हमदर्द	कप्तान	
ब्यूटीफुल	टीप	
वैरी विजी	नावैद	
कर्फ्यू	स्वेटर	
तानाशाह	कनफर्म	

पैगाम	मुफ़लिस
प्रक्टिकल	रोशनदान
बेहया	तक़रार

इसी प्रकार से दोहा द्रष्टव्य हैं जिनमें तत्सम्, तद्भव, हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, फारसी, देशज शब्दों को देखा जा सकता है -

पॉप सांग इज चार्मिंग, सारे गीत निकृष्ट।
इंग्लिश इज लग्ज्यूरियस, हिन्दी भोगे कष्ट।।(60)

विस्तृत भू पैरों तले, सिर पर गगन विशाल।
शून्य हृदय-मस्तिष्क ले, नर फिर भी कंगाल।।(61)

प्रकृति, पुरुष, प्रतिद्वन्द्विता, श्यामल नभ मैदान।
रवि-शशि की कंदुक लिये खेल रहे चौगान।।(62)

मैं जिस पथ पर भी चला, वह था तेरा पंथ।
व्यर्थ हुए पोथे सभी, व्यर्थ हुए सब ग्रंथ।।(63)

कदम-कदम पर दाव हैं, कैसे बचें हुजूर।
इस बस्ती के ठग हुए, दुनियाँ में मशहूर।।(64)

निम्न दोहे में भाषा प्रयोग के साथ साथ शब्द-चयन की कुशलता भावाभिव्यक्ति को चमत्कृति प्रदान करती है-

चंद्रमुखी चिरयौवना, चपल-चित्र चितचोर।
चारुचंद्र चमकत चटक, चितवत चकित चकोर।।(65)

कुछ अन्य दोहों में-

बादल चिट्ठिरसाँ हैं बाँट रहे हैं डाक।
पानी की खबरें पढें बरगद शीशम ढाक।।(66)

शहरों में कर्फ्यू लगा, लोग घरों में कैद।
बूढ़े रमजानी मरे, बिन हकीम बिन बैद।।(67)

संसद शुचि साकेत सम, इसको कोटि प्रणाम।
चैम्बर ही मंदिर बना, कुर्सी में आराम।।(68)

घर-घर बारूदी धुँआ अब न चंदनी छाँव।
भोले-भाले हैं कहाँ, भाले वाले गाँव ।।(69)

पथ के दोनों और जल, विद्युद्दीपक-पाँति।
नैश पथिक सिर पर तनी, वरदहस्त की भाँति ।।(70)

वय-चपला आकर थमी, चौथेपन के द्वार।
चरणामृत में रुचि जगी, अक्षरामृत निःसार ।।(71)

इस प्रकार सामयिक दोहा साहित्य की भाषा में अनेक भाषाओं की शब्दावली का प्रयोग देखा जा सकता है। जो दोहा साहित्य के भाषिक विकास की परम्परा को अग्रसर करता है।

जब दोहा छंद की वापसी छायावादोत्तर काव्य में हुई तब उसके रूप में और प्रकृति में बहुत बडा अन्तर आ चुका था। छान्दस स्वरुप तो वैसा ही रहना था किन्तु इसके कथ्य में तथा प्रस्तुति में कुछ अभिनव प्रयोग अवस्थ हुए हैं। कुछ कवियों ने दोहा छंद को प्रकारान्तर से उसके छान्दस गठन में किंचित परिवर्तन के साथ प्रस्तुत किया है। किन्तु यदि दोहा छंद की मानद परिभाषा के अनुकूल यदि इस छंद का सृजन नहीं होता तो हम उसे दोहा छंद नहीं कह सकते। ग्यारह और तेरह की यति के साथ चौबीस मात्राओं से गठित दो पंक्तियों में आवत्त यह दोहा छंद प्राचीन और अर्वाचीन दोनों ही युग के कवियों के लिए स्वीकार्य है।

दोहा छंद की पुनः वापिसी का एक बहुत बडा कारण यह भी था कि आज के कम्प्यूटराइज्ड युग में मीडिया की आधुनिक तकनिकी के विस्तृत प्रसारण में अब दीर्घ वृत्ताकार छंदों का पढना पढाना सम्भव नहीं है। व्यक्ति के पास समयाभाव है। आज वह प्रसाद की कामायनी, दिनकर की उर्वसी अथवा मैथिलीशरण गुप्त के साकेत को पढने और समझने की मनःस्थिति से नहीं जुड पाता। इस मनोवृत्ति के कारण ही कविता के आयाम सिकुडते गये। छंद का परिमाप घटता गया महाकाव्यों के सृजन समाप्त हो गये, लम्बी कविताओं में खण्ड काव्यों की परिणति हो गयी। लम्बे गीतों के स्थान पर लघुवृत्तीय नवगीत सामने आ गये और परम्परित छंदों में भी दोहा, चौपाई, सोरठा जैसे अति लघुवृत्तीय छंद अधिक लोकग्राह्य होने लगे।

सातवें दसक के बाद हिन्दी कविता में उर्दू गज़ल विधा का बड़ी ही गर्म जोशी के साथ आगमन हुआ। गज़ल छंद के विभिन्न शेर पूर्वापर सम्बंध न रखते हुए भी अपने अलग अलग कथ्य में बड़ी बजनदारी के साथ रसज्ञ समाज में स्वीकारे गये। इन शेरों को लोकाग्रही रुझान को देखकर हिन्दी कवियों में छंद निबंदन की प्राचीन पोथियों के पत्र पलटने प्रारम्भ कर दिये अपने सामयिक

संदर्भों से जुडे सत्यार्थमक कथ्यों को लेकर उन्होंने इस सहज और सरल छंद को अवग्राह्य किया और जिस तरह ग़ज़ल के शेरों में एक बिनाग्रही आकर्षण था जिसके कारण वे लोकप्रिय हुए वैसा ही लोकाग्रही रुझान इन दोहों में भी जब अनुभव किया जाने लगा तब उस दोहा छंद की शानदार वापसी हिन्दी सर्जकों को रचनात्मक माहौल में हो पाई।

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है कि दोहा हिन्दी का लघुवृत्तीय छंद है जो अपने परिक्षेत्र में बात को अधिक विस्तार देने के लिए शब्दों का मुखापेक्ष नही रहता। हर दोहे का हर कथ्य सूत्र सूत्रात्मक स्वरूप में संयोजित होता है। जिसमें सबसे महत्वपूर्ण भूमिका भाषा की होती है। भाषा के दो रुप इस भूमिका में योगदान देते हैं।

पहला ''शब्द'', और दूसरा ''अर्थ''। रचनाकार शब्दों के संयोजन में जितना चतुर और प्रतिभाशाली होगा उतना ही वह छंद के निबंधन में और अर्थ के निस्तरण में अपनी क्षमता का द्वितन करा सकेगा।

शब्दों के संचयन का जहाँ तक प्रश्न है। वहाँ रचनाकार अपने स्वयं के शब्द कोष से तो शब्द ग्रहण करता ही है। कुछ तिर्दिष्ट अर्थो को सम्प्रेषित करने के लिए प्रायोजित शब्दावली का भी प्रयोग करता है। वस्तुतः रचनाकार दो तरह की शब्दावली का प्रयोग करता है। एक वे शब्द जो उसकी विस्मृति पटल पर दैनन्दनी से ग्रहण किये हैं। दूसरे वे शब्द हैं जिन्हे वह स्वयं संग्रहित करता है। व उपयुक्त अर्थ के लिए प्रायोजित भी करता है। कुछ शब्द व्यंग्यार्थ में प्रकट होकर रचनाकार के अभीष्ट अर्थ को व्याख्यायित करते हैं। इस रचना प्रक्रिया में रचनाकार नागर और लोक अथवा ग्राम्य परिष्कृत दोनों ही प्रकार के शब्दों का प्रयोग करता है। यह प्रवृत्ति मध्यकाल के कवियों में अधिक मुखरित थी और आधुनिक दोहाकारों में भी इस प्रवृत्ति का अधिकांश स्थल पर अनुभव किया जा सकता है। अन्तर केवल इतना ही है कि मध्यकालीन आंचलिक भाषा के कवियों ने जनाग्रही लोक अंचल की भाषा के साथ-साथ शिष्टभाषा के रुप में संस्कृत के तत्सम्, तदभव तथा मिश्र शब्दों को ग्रहण किया था और साथ में यत्र-तत्र अरबी, फारसी के लोक प्रचलित शब्द भी सहज प्रयुक्त हुए थे। किन्तु आज का परिवेश मानव सभ्यता का एक नूतनतम् अभिनव अध्याय है। संस्कृति साहित्य के साथ-साथ तकनिकी एवं वैज्ञानिक उपलब्धियों ने आम आदमी की जिन्दगी को एक नया ही मोड़ प्रदान किया है। रोज मर्रा की जिंदगी में अंग्रेजी, फ्रान्स, जर्मनी, इटालियन रसियन, लेटिन, आदि विदेशी भाषाओं के इतने शब्द भारतीय मनीषा में समाहित हो गये हैं कि उनके लिए सही ढंग का पर्यायवाची शब्द मिलना भी मुश्किल हो गया है। जैसे कि अभी-अभी भयंकर समुद्री तूफान को जब सुनामी शब्द से संज्ञापित आया और फिर धीरे-धीरे यह शब्द

सम्पूर्ण भारतीय भाषा के शब्द कोषों में सहज रुप से समन्वित हो गया।

इसी परिप्रेक्ष्य में कुछ दोहे द्रष्टव्य हैं जिनमे आधुनिक भाषिक शब्दावली देखी जा सकती है। जो हमारे दैनिक जीवन में व्यवहृत है। यथा-

घर-घर में होने लगा, कम्प्यूटर का खेल।
अमरीका और रूस में, होगा मेल-अमेल।।

इसी प्रकार-

नैटवर्क आयोजना, सब टी.वी. के सीन।
मारकीट ऊँचा चढ़ा, नीचे कलुआ दीन।।

कहने का तात्पर्य यह है कि चीन, जापान, मिश्र, फ्रान्स, जर्मनी, रुस, अमेरीका आदि के वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए नियत किये गये अर्थ संसार की समस्त भाषाओं में सहज स्वीकारे जाते हैं। तो वह शब्द उस भाषा के लिए अपरिचित नहीं रह जाता। एक दोहा द्रष्टव्य है-

सोनामी नामी हुआ, बदनामी के साथ।
पानी-पानी हो गया, तैर रहा जल जात।।

प्रकारान्तर से कहा जा सकता है कि जब संसार में संचार माध्यमों के विस्तरण ने एक नई सभ्यता को विकास के पथ पर अग्रसर किया तब उस सभ्यता के साथ-साथ एक नवीनतम समृद्ध शब्द कोष भी दैनिक व्यवहार में समा गया जिसे किसी भाषा का शब्द न कहकर आधुनिक वैज्ञानिक अवदान का शब्द कहा जा सकेगा।

कुछ ऐसे ही शब्दों में गढ़ित दोहा द्रष्टव्य हैं-

मोबाईल है जेव में, कम्प्यूटर भी पास।
लेकिन काम मिला नहीं, लड़का हुआ हतास।।

इसी प्रकार एक अन्य दोहा भी देखिए-

फेक्स गया ई-मेल हुआ, मोबाइल पर बात।
पीछे-पीछे मीडिया, दिन हो अथवा रात।।

आधुनिक दोहाकारों ने कम्प्यूटर, मोबाइल, ईमेल प्रोग्राम, कॉर्डलेस और न जाने कितने संचार माध्यम के शब्द है। जो आज अधिकांश हिन्दी भाषी लोगों की दैनन्दनी से जुड़ गये हैं। बहुत से बुद्धिजीवी, वैयाकरण और भाषायिक विद्वान दुराग्रह के साथ मन्तोचारण करते हैं कि-

भाषा शुद्ध होनी चाहिए, संस्कृत निष्ट होनी चाहिए, विदेशी शब्दों का प्रयोग अमान्य होना चाहिए, वाक्य विन्यास और व्याकरण सर्वथा औचित्य पूर्ण और नियमों में आवद्ध होना चाहिए और जहॉ तक हो केवल भारतीय शब्दावली का प्रयोग करते रहे। यदि इस मानसिकता से निबद्ध होकर हिन्दी का प्रचार किया तो निश्चित ही यह भाषा खड़ी बोली नाम के अनुसार एक आंचलिक बोली बनकर रह जायेगी और इसकी राष्ट्रीय अस्मिता जो अब अन्तर्राष्ट्रीयता में परिवर्तित हो रही है, नष्ट हो जायेगी।

इस तरह हम देखते हैं कि वैज्ञानिक उपलब्धियों ने मानव जीवन को इतना प्रभावित किया है कि आज के युग में धर्म, संस्कृति, साहित्य, समाज, राजनीति, व्यवसाय और शिक्षा जैसे सभी क्षेत्र एक नई भाषिक संरचना से जुड गये हैं। वैज्ञानिक उपकरणों के नये-नये नाम अंग्रेजी दवाइयों, विलायती शराबों बाजारु ठण्डे पेय और ड्राय फ्रूड्स जैसी वस्तुओं के जो नये नाम व्यवहार में आ गये हैं उन्हे जबरदस्ती अनुदित करके विचित्र और अव्यवहारिक समानार्थी शब्दों के स्थानान्तरण की बात गले नहीं उतरती। व्यवहारिक द्रष्टि से और प्रयोग सारल्य की द्रष्टि से जब किसी शब्द को जनवादी सोच सहज रुप से ग्रहण कर लेती है तब वह शब्द किसी विशिष्ट भाषा का न होकर लोक का हो जाता है। जिसे अधिकांश भाषा भाषी उसी रुप में ग्रहण कर लेते हैं। जैसे-रेल, टेलीफोन, सिगरेट, माचिस आदि हिन्दी दोहों में हालाँकि इस तरह के प्रयोग कम हुए हैं। किन्तु आधुनिक रचनाकारों ने समय के लाभ समझौता करते हुए इन नामों को सहजता के साथ अपने छंदों में निबंधित किया है।

सारांश रुप में कहा जा सकता है कि दोहा एक ऐसा छंद है जो लोकाग्रही रुझान से संलग्न होकर आम आदमी की रागात्मक वृत्ति से जुड़ा है। तो दूसरी ओर इसमें बुद्धि जीवियों के गहन सोच से, संपक्क साहित्यिक भाषा का भी प्रयोग देखा जा सकता है। यह प्रयोग मध्यकाल में बिहारी और कबीर के दोहों में देखा जा सकता है जो आज के युग में सोमठाकुर और निदाफ़ाजली के दोहों में देखा जा सकता है। मध्यकालीन रसाग्रही कवि बिहारी कहते हैं-

बतरस लालच लाल की, मुरली दई लुकाय।
सौंह कहै भौंहन हँसै, दैन कहै नट जाय॥

वहीं कबीर का दोहा देखिए-

कबिरा–कबिरा का कहै, जा जमुना के तीर।
इक–इक गोपी प्रेम में, बहिगे लाख कबीर॥

आधुनिक युग में सोम ठाकुर कहते हैं-

वही पौर वहि देहरी, वही पिया को गाँम।

बहू-बहू ते कब कहाँ, बुढिया पड़गौ नाँम।।

इस तरह दोहा छंद की भाषा समय और सामाजिक बदलाव के साथ परिवर्तित होती रही है। धर्म और राजनीति ने इस पर अपना प्रभाव बनाये रखा है किन्तु इतना अवश्य है कि भाषा के हर बदलते हुए अंदाज में दोहा छंद की अपनी अस्मिता अपना बाँकपन है और अंदाज है जो भाषिक स्तर पर सतत प्रयोगशील है और नवीन अर्थवत्ता के साथ अग्रसर होता रहा है।

संदर्भ सूची

1) कवि पद्माकर, काव्य लक्षण व्यक्त करता हुआ दोहा।

2) कवि गिरधर की कुण्डलियाँ, ना.प्र.सा., पृष्ठ 7

3) बिहारी सतसई की टीका, रचनार-कृष्ण कवि।

4) कबीर की साखी।

5) गो. हरिरायजी का पद साहित्य (सं. प्रभुदयाल मित्तल, पद संख्या 355)

6) अमीर खुसरों का स्फुट पद।

7) शेख शरकुद्दिन बू-आली का स्फुट पद।

8) खुसरों की जनप्रचलित पहेली।

9) कबीरदास का पद, कबीर बानी से।

10) दादू दयाल कृत दादू बानी से।

11) मलिक मुहम्मद जायसी, पद्मावत का पद।

12) गो. तुलसीदास कृत दोहावली का पद।

13) रहीमदास कृत रहीमदोावली का पद।

14) वही ” ” ”

15) कवि वृंद कृत वृंद सतसई का नीति विषयक पद ।

16) वही ” ” ”

17) कवि रसनिधि कृत रतन हज़ारा से।

18) दयाराम सतसई दो.सं.-78

19) दयाराम सतसई दो.सं.-158

20) सप्तपदी-5 (दोहासंग्रह) सं.-देवेन्द्र शर्मा ''इन्द्र'' दो.38, पृष्ठ 63

21) वही ” ” ” दो.26, पृष्ठ 62

22) वही ” ” ” दो.30, पृष्ठ 62

23) वही ” ” ” दो.26, पृष्ठ 62

24) वही ” ” ” दो.26, पृष्ठ 62

25) वही ” ” ” दो.25, पृष्ठ 90

26) वही ” ” ” दो.41, पृष्ठ 91

27) वही ” ” ”

28) वही ” ” ” दो.52, पृष्ठ 93

29) वही " " " दो.54, पृष्ठ 93

30) सप्तपदी-1 (दोहा संग्रह), सं. देवेन्द्र शर्मा ''इन्द्र'' दो. 9, पृष्ठ 18

31) वही " " " " " दो.15, पृष्ठ 19

32) वही " " " " " दो.14, पृष्ठ 18

33) वही " " " " " दो.29, पृष्ठ 20

34) वही " " " " " दो.59

35) वही " " " " " दो.68, पृष्ठ 38

36) वही " " " " " दो.13, पृष्ठ 46

37) सप्तपदी-1 सं. देवेन्द्र शर्मा ''इन्द्र''

38) वही " " " " "

39) वही " " " " " दो.85, पृष्ठ 54

40) वही " " " " " दो.56, पृष्ठ 65

41) सप्तपदी-5 सं. देवेन्द्र शर्मा ''इन्द्र'', दो.89, पृष्ठ 27

42) वही " " " " "

43) वही " " " " " दो.25, पृष्ठ 34

44) वही " " " " "

45) वही " " " " "

46) दोहा दशक-2, सं. अशोक ''अंजुम'', दो. 56, पृष्ठ 53

47) वही " " " " " दो. 55, पृष्ठ 53

48) रामनिवास मानव कृत, बोलो मेरे राम (दोहा संग्रह), दो.30

49) वही " " " " " दो. 29

50) वही " " " " " दो.20, पृष्ठ 66

51) वही " " " " " दो.82, पृष्ठ 23

52) वही " " " " " दो.141, पृष्ठ 32

53) वही " " " " " दो.152, पृष्ठ 34

54) वही " " " " " दो.374, पृष्ठ 69

55) सप्तपदी-5, सं. देवेन्द्र शर्मा ''इन्द्र'' के रचनाकार - दिनेश रस्तोगी दो.43

56) दोहा दशक-2, सं. अशोक अंजुम दो. 49, पृष्ठ 64

57) तुजुक हजारा, विश्वप्रकाश दीक्षित ''बटुक'', दो. 26

58) वही ” ” ” ” ” दो.79

59) वही ” ” ” ” ” दो.83

60) दोहा दशक-2, सं अशोक ''अंजुम'', दो.65

61) सप्तपदी-1, दोहा संग्रह के दोहाकार विश्वप्रकास दीक्षित ''बटुक'' सं. ''इन्द्र'', दो.58

62) वही ” ” ” ” ” दो. 72

63) वही, दोहाकार पाल भसीन, दो. 64

64) वही, दोहाकार कुमार रवीन्द्र, दो. 67

65) वही, दोहाकार ब्रजकिशोर वर्मा ''शैद्री'', दो.26

66) वही, दोहाकार दिनेश शुक्ल, दो. 51

67) वही ” ” ” ” ” दो. 51

68) ''तुजुक हज़ारा'' विश्वप्रकाश दीक्षित ''बटुक'', दो. 123

69) ''उग आई फिर दूब'' अनंतराम मिश्र 'अनंत', दो. 5

70) वही ” ” ” ” ” दो. 101

71) वही ” ” ” ” ” दो. 219